क्या हम समाचार को बेचने पर सहमत हैं

मीडिया के उत्तरदायित्व तथा अधिकारों पर केन्द्रित एक राष्ट्रीय संगोष्ठी में इंदिरा गांधी खुला विश्वविद्यालय, दिल्ली की एक युवा विमर्शकर्ता ने समाचार को बेचने की वस्तु बन जाने को स्वाभाविक मानते हुए कहा कि इसमें कुछ गलत नहीं है। साथ ही उन्होंने पत्रकार को भी बेचने वाला समाचार बनाने के लिए गलत नहीं ठहराया। उन्होंने कहा कि ऐसा करते हुए वह अपने ब्रांड की जरूरत ही पूरी कर रहा है। उसमें कुछ गलत नहीं है। कोई एक दशक पहले टाइम्स ऑफ इंडिया के प्रबंधन प्रमुख समीर जैन ने भी लगभग इसी तरह की बात कही थी। उसकी व्यापक आलोचना हुई क्योंकि अभी, कम लोग समाचार या सूचना को बेचने की वस्तु मानते हैं और उसकी ऐसी व्याख्या नहीं करते हैं या ऐसी व्याख्या से सहमत नहीं हो पाते हैं। पर ऐसी व्याख्याएं यह तो बताती ही हैं कि समाचार को विक्रय-वस्तु मान लेने की दृष्टि बन रही है या बन चुकी है। इस अर्थ में समाचारपत्र या समाचार चैनल अथवा एजेंसियां इस विक्रय-वस्तु को बेचकर मुनाफा कमाना अनैतिक न मानती हों या ऐसा करना सामान्य व्यवसाय धर्म मानती हों तो अचरज करने की बात नहीं है।

फिर भी, विमर्श करने की बात तो है ही। अधिकतर पत्रकार, संचार अध्येता, तथा पाठक या मीडिया के उपयोग या उपभोगकर्ता यह मानते हैं कि लोगों में सूचना, समाचार या विचार का मुक्त आदान-प्रदान करना उनकी सामान्य प्रवृत्ति है। लोग आपस में परिचित हों या नहीं पर मिलते ही ऐसा आदान-प्रदान करते हैं। इस तरह के आदान-प्रदान से ही वे समाज को जानते-समझते और अपना हस्तक्षेप करते हैं। पत्रकारिता ने भी इसी प्रवृत्ति को ही तो अपना आधार बनाया है। इसे समाज की सेवा करने का उपाय माना जाता रहा है। यह न तो पूरी तरह से व्यवसाय रहा है और न इसे व्यवसाय के रूप में विकसित किया गया। अब भी समाचार की जितनी व्याख्यायें की जा रही हैं उनमें सबसे कम उसके वाणिज्यिक उपयोग की हैं। बीसवीं सदी में या उससे पहले संभवत: एक भी व्याख्याकार ऐसा नहीं मिलता था जिसने सूचना या समाचार को बेचने की वस्तु माना हो। यह तो अब से लगभग एक दशक पूर्व या उसके आसपास ही कुछ अमरीकी प्रकाशकों-प्रसारकों ने इसे बेचने के रूप में माना और इसी तरह से समाचार और सूचना उद्योग को समझने की पैरवी की। 2012 में प्रकाशित रीडिंग न्यूज पेपर्स में एक अमरीकी व्याख्याकार ने कहा कि समाचार वस्तुनिष्ठ और ऐतिहासिक अवधारणा नहीं है, असल में तो समाचार के बारे में प्रकाशन उद्योग की बेचने की वस्तु वाली व्याख्या

ही ज्यादा सही है। विकीपीडिया पर भी अभी कुछ समय पहले ही यह जोड़ा गया कि जो न्यूज इंडस्ट्री बेचे वह समाचार है। इसके पहले भी कुछ ही लोगों ने जो बेची जा सके या जिसे बेचा जा सके, वह समाचार है, इस तरह की व्याख्यायें की थीं। पर ये सब लोग व्यवसाय के थे और वे अपने व्यावसायिक दृष्टिकोण की वैधता के लिए ही ऐसा कर रहे थे। कोई भी यूरो-अमरीकन संचार अध्येता या सामाजिक विकासवादी पत्रकार समाचार को विक्रय-वस्तु के रूप में न तो व्याख्या करता है या उस तरह की पैरवी कर रहा था। सामाजिक अध्येता भी उसे समाज के विकास एवं लोकतंत्र का ही सहयोगी मानते रहे हैं। भारत का दृष्टिकोण तो सदा से ही उसे समाज की सेवा और सजगता के लिए सहयोगी मानता रहा है।

यह दृष्टिकोण अब बदल रहा है। मीडिया व्यवसायी के साथ ही कुछ पत्रकार भी उसे व्यवसाय में बदल जाने के पक्षधर हैं। वे यह मानते हैं कि अन्य जरूरतों की तरह ही सूचना, समाचार और मनोरंजन भी उनकी सामाजिक जरूरत है जिसकी पूर्ति मीडिया उद्योग करता है और उसके एवज में उसका दाम लेता है। ऊपरी तौर पर इसमें कुछ बुराई भी नजर नहीं आती है। पर जैसे विज्ञापन-सूचना को लोगों ने पेड न्यूज मान लिया है, सामाजिक सूचनाओं को लोग विज्ञापन मानने से इनकार करते हैं। समाचार या सूचना को विक्रय-वस्तु मानना और उसे व्यवसाय या बाजार का हिस्सा बनाने के खतरे हैं। इसे ठीक तरह से समझा जाना चाहिये। इस खतरे को न समझ पाने से शिक्षा, चिकित्सा जैसे सेवा क्षेत्रों में आये बदलाव का परिणाम लोग अब अनुभव करने लगे हैं। वे लोग जो आर्थिक रूप से समर्थ नहीं हैं, वे इनका लाभ उस तरह से नहीं ले पा रहे हैं, जिस तरह से आर्थिक रूप से सम्पन्न लोग ले रहे हैं। दूसरा, इन सेवा क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों की वृत्ति में भी परिवर्तन हुआ है। वे लोभ-लाभ के लालच में सभी तरह की मूल्यहीनता कर रहे हैं। निजी विश्वविद्यालयों में शिक्षा अब व्यवसाय बन चुकी है और उसका ज्ञान या जागरूकता से कोई लेना देना नहीं रहा है।

मीडिया का प्रभाव चिकित्सा, शिक्षा आदि सेवा-क्षेत्रों से भिन्न तथा व्यापक है। वह समाज के गठन, गढ़न एवं जागरूकता से संबंधित है। वह लोगों के लिए उनकी जरूरत का एजेंडा सुझाता है। अध्ययनों से यह भी स्पष्ट हो गया है कि लोगों के व्यवहार, प्रवृत्ति आदि पर सूचनाएँ तथा विचारों का प्रभाव पड़ता है। लोकतांत्रिक प्रक्रिया जानकारी, विचार तथा विमर्श के अभाव में तानाशाही या राजशाही में न चाहते हुए भी बदल सकती है। यह आजमाया हुआ तथ्य है कि सामंत या तानाशाह लोकोपकार करते हुए भी लोगों के विकास और स्वाभिमान का विरोधी होता है। बाजार भी लोगों से ही अपने लाभ-लोभ की पूर्ति करता है और उस मुनाफे के लिए वह किसी भी तरह का समझौता या मूल्यहीनता कर सकता है। रूपर्ड मर्डोक का किस्सा अब पूरे जगत को पता हो गया है। ब्रिटेन के सन तथा अमेरिका के कुछ समाचारपत्रों ने भी अपने लाभ के लिए सत्ताओं को गिराने और व्यवसाय को

बढ़ाने के लिए कई मूल्यहीन समझौते किये हैं। भारत में नीरा राडिया का खुलासा इसी तरह का सच है। बहुत ठीक से अध्ययन करें तो 2014 में सम्पन्न लोक सभा के चुनाव और उसके बाद दिल्ली प्रदेश के हुए चुनाव के परिणामों में जो बड़ा फेरबदल हुआ है, वह मीडिया का अपने पक्ष में उपयोग करने का ही नतीजा है। एक दशक से अधिक समय से पैसे लेकर प्रचार को समाचार बनाकर बेचने का खेल मीडिया ही तो करता रहा है। यह तो वे कुछ बातें हैं जो कुछ सजग पत्रकारों, मीडिया अध्येताओं के कारण हमारे सामने आ गई हैं। कितनी ही बातें, कितने ही इस तरह के समझौते अभी भी रहस्य बने हुए हैं। यह सब एक मायने में समाचार-विचार को विक्रय वस्तु मानने का ही तो परिणाम है। तब हम सोचें कि क्या विचार और समाचार को भी बाजार को मुनाफे के लिए अन्य उपभोग्य वस्तुओं की तरह छोड़ दें या उसे समाज को बदलने के कारगर उपाय के रूप में मूल्यनिष्ठ तथा ध्येयनिष्ठ ही बनायें।

****